भारतीय वैदिक साहित्य में जल विमर्श

अनिल कुमार मिश्र
जल प्रौद्योगिकी केंद्र, भा.कृ.अनु.प.- भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
ईमेल: dranilkumarmishra1@gmail.com

भारतीय वैदिक साहित्य के संस्कृत वाङ्मय को दो भागों में बांटा जा सकता है- वैदिक साहित्य तथा लौकिक साहित्य। छान्दोग्य उपनिषद तथा बौद्ध-ग्रंथों में पुराण को पंचम वेद कहा गया है। 'अथर्वसंहिता' के अनुसार ऋक्, साम, छन्द, पुराण तथा यजुः सब एक साथ आविर्भूत हुए । पुराण के संबंध में 'शतपथ' ब्राह्मण और 'बृहदारण्यक' उपनिषद में कहा गया है कि - 'जैसे गीली लकड़ी की आग से धुआं निकलता है, उसी प्रकार इस महाभूत से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान निःश्वास रूप में उद्भूत हुए।' वेद सनातन धर्म के सर्वप्रामाणिक तथा प्राचीन ग्रंथ तो हैं ही, परंतु वेद को परिवर्धित करने वाला पुराण ही है। इसलिए इसे 'वेद का पूरक' भी कहा जाता है। वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य को जोड़ने की कड़ी 'पुराण साहित्य' है। भारतीय साहित्य में पुराणों को भी वेदों के समान ही प्राचीन बताया गया है। प्राचीन भक्ति ग्रंथों के रूप में पुराण का महत्व सर्वाधिक है। यह हिन्दुओं के धर्म संबंधी आख्यान ग्रंथ हैं, जिनमें विषयों की कोई सीमा नहीं है। इसमें ब्रह्माण्डविद्या, राजाओं, नायकों, देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों की वंशावली, लोक कथायें, तीर्थयात्रा, मन्दिर, चिकित्सा, खगोलशास्त्र, व्याकरण, खनिज विज्ञान, हास्य, प्रेमकथाओं आदि का वर्णन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पुराण में कल्पित कथाओं की विचित्रता और इसके रोचक वर्णन द्वारा सांप्रदायिक व साधारण उपदेश भी प्राप्त होते हैं। भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को जनसाधारण तक पहुंचाने का श्रेय इन्हीं पुराणों को जाता है। पुराणों का समय वेदकाल से प्रारम्भ होकर सोलहवीं शताब्दी के अंतिम कालखंड तक माना गया है। इस लेख में हम हमारे वेदों और उपवेदों में जल के महत्व और प्रकार के बारे में चर्चा करेंगे।

भारतीय वैदिक साहित्य में जल की महिमा का विशद वर्णन प्राप्त होता है। जिसका अर्थ है की हमारी सनातन धर्म और संस्कृति के प्रणेताओं को जल के महतत्व और उसके प्रबंधन का सम्पूर्ण और सम्यक ज्ञान अवश्य था, जिस का आज-कल की पीढ़ी के संस्कृत भाषा ज्ञान से अनभिज्ञ
जन मानस को भान तक नहीं है। सृष्टि के प्रारंभ से ही प्राणियों के लिए जल का विशेष महत्व रहा है. हिंदू धर्म के आदिग्रंथों और पुराणों में भी जल के महत्व और निर्मल महिमा का वर्णन किया गया है। वैदिक साहित्य में सदैव यह माना गया है कि हमारा शरीर पंच महाभूतों अर्थात पंचतत्वों से बना है जिसमें एक तत्व जल भी है। ऋग्वेद का नदी सूक्त नदियों के संरक्षण एवं संवर्धन की कामना का संदेश देते हैं। प्राचीन भारतीय सभ्यता में 'जल ही जीवन है' का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है। आदिग्रंथ और पुराणों में जल की महिमा इस प्रकार से वर्णित है कि मनुष्य का शरीर मुख्य रूप से जल से बना है, जो लगभग 70% है। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार, पृथ्वी एकमात्र ऐसा ग्रह है जहाँ 70% जल है, लेकिन केवल थोड़ी मात्रा में ताज़ा जल है। यह एक अद्भुत कहावत है "जल ही जीवन है"। वेदों और उपवेदों में जल का सुन्दर वर्णन है। चूँकि जल अमृत और जीवन का स्रोत है, साथ ही

मानव सभ्यता के लिए आवश्यक भी है, मानव जीवन, और हमारी अर्थव्यवस्था और कृषि के लिए, जल और उसके संरक्षण का भारतीय संस्कृति और लोकाचार में अनिवार्य रूप से केंद्रीय स्थान रहा है।

वैदिक साहित्य में जल की उत्पत्ति का सिद्धांत

"मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता॥"

-ऋग्वेद,1/2/7

इस मंत्र का भावानुवाद है कि- "घृत के समान प्राणप्रद वृष्टि सम्पन्न कराने वाले 'मित्र' और 'वरुण' देवों का हम आह्वान करते हैं। मित्र हमें बलशाली बनायें तथा वरुणदेव हमारे हिंसक शत्रुओ का नाश करें।" जलविज्ञान की अपेक्षा से इस मंत्र में मंत्रद्रष्टा ऋषि द्वारा यज्ञ का सम्पादन करते हुए कहा जा रहा है कि-"पदार्थों को पवित्र करने में दक्ष होने से 'मित्र' अर्थात् 'हाइड्रोजन' वायु को और रोग का भक्षण करने वाली और स्वास्थ्यप्रद होने से सबके लिए लाभकारी 'वरुण' अर्थात् 'आक्सीजन' वायु को मैं अपने पास बुलाता हूँ।" क्योंकि ये दोनों (घृताचीम् +धियम्) जल का निर्माण करने वाले देव हैं। आधुनिक जलविज्ञान की शब्दावली में कहें तो इस वैदिक ऋचा में वैदिक जल की उत्पत्ति का सिद्धांत बताया गया है और साथ ही उस जल की उत्पत्ति के लिए आधुनिक मानसून विज्ञान की मान्यता के अनुसार 'हाइड्रॉलोजिकल साइकल' यानी वृष्टिचक्र को धरती में जल उत्पत्ति का कारण माना गया है। पाश्चात्य विद्वान भी इस मंत्र की जल वैज्ञानिक और मानसून वैज्ञानिक व्याख्या से सहमत होते हुए कहते हैं कि वस्तुतः 'मित्र' अर्थात् सूर्य शुद्ध शक्ति का प्रतीक है और ' 'वरुण' 'शत्रु (रोगों) का भक्षक' कहा गया है और इस मंत्र में इन दोनों देवों का धरती पर जल बरसाने के प्रयोजन से ही संयुक्त रूप से आह्वान किया गया है। एक विद्वान् ने सायण भाष्य के आधार पर मंत्र की व्याख्या करते हुए यह स्पष्टीकरण भी किया है कि इन दोनों देवशक्तियों के संयुक्त प्रयास से ही वर्षा के द्वारा आकाश से पृथ्वी में जल का बहाव उत्पन्न होता है। मित्र अपने सामान्य अर्थ में, सूर्य का ही एक नाम है और जल पर वरुण का स्वामित्व माना जाता है। विल्सन ने यहां पर मित्र को सूर्य का विशेषण मानते हुए उसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से जल बहाने की प्रक्रिया माना है और वरुण वाष्पीकरण द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से वर्षा का कारण बताया गया है। इस प्रकार ऋग्वेद के इस मंत्र के अनुसार वायुमंडल में दो देवताओं 'मित्र' और 'वरुण' के संयुक्त प्रयासों के परिणाम स्वरूप ही वाष्प संघनित होने के बाद समुद्र का जल 'रिसाइकल' हो कर फिर से वर्षा जल के रूप में नीचे धरती पर अवतरित होता है। आधुनिक जलविज्ञान की शब्दावली में कहें तो इस वैदिक ऋचा में वैदिक जल की उत्पत्ति का सिद्धांत बताया गया है और साथ ही उस जल की उत्पत्ति के लिए आधुनिक मानसून विज्ञान की मान्यता के अनुसार 'हाइड्रॉलोजिकल साइकल' यानी वृष्टिचक्र को धरती में जल उत्पत्ति का कारण माना गया है।

ऋग्वेद में इस जल वैज्ञानिक तथ्य का उल्लेख है कि सूर्य ही जल को उत्पन्न करने वाला है। वह अपनी किरणों से जल को भाप बना कर,उसे बादल के रूप में बदल देता है। इस प्रकार बादल बरस कर फिर जल के रूप में धरती पर आ जाता है। ऋग्वेद के एक मंत्र में जल के ऊपर जाने और उसके बाद नीचे आकर पृथ्वी में वर्षा करने के सालाना जलचक्र का उल्लेख आया है, जिसे आधुनिक जलविज्ञान में 'हाइड्रोजिकिल साइकल' भी कहते हैं –

"समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः.
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः॥"

– ऋग्वेद,1/164/51

अर्थात् जो जल ग्रीष्म ऋतु में बहुत दिनों तक ऊपर की ओर जाता रहता है यानी सूर्य के ताप से कण कण होकर,वायु की सहायता से ऊपर उठकर और मेघ बनकर अन्तरिक्ष में ठहरता है। उसके बाद वही जल वर्षाकाल के आने पर नीचे भूमि पर बरसता है। इसी प्रक्रिया से मेघ भूमि को तृप्त करते हैं और अग्नि द्वारा बिजली आदि चमकाकर अन्तरिक्ष को भी तृप्त करते हैं। इस वैदिक मंत्र का आशय यह है कि यज्ञ आदि अनुष्ठानों द्वारा वर्षा होने से भूमि पर उत्पन्न जीव प्राण धारण करते हैं और अग्नि से अन्तरिक्ष, वायु, मेघ आदि की परिशुद्धि होती है। वैदिक मंत्रों में मानसूनी वर्षा के लिए सूर्यदेव का विशेष आभार प्रकट किया गया है क्योंकि जलों के केन्द्र में रहकर वाष्पीकरण करने,वृष्टि के सहायक वृक्ष-वनस्पतियों को पुष्ट बनाने तथा जल की वर्षा करके पृथ्वी को शस्य श्यामला बनाने में सूर्य की ही अहम भूमिका मानी गई है –

"दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं
दर्शतमोषधीनाम्। अभीपतो
वृष्टिभिस्तर्पयन्तंसरस्वन्तमवसे जोहवीमि॥"

– ऋग्वेद, 1.164.52

समस्त प्राणियों के जीवन धारण करने के लिए जल का महत्व

प्राचीन भारतीय संस्कृति में जल को जीवन माना गया है-**"जलमेव जीवनम् अस्तु"** । अर्थात जल ही जीवन है। वेदों में जल को औषधीय गुणयुक्त कहा गया है। हमारे देश के प्राचीन वैदिक साहित्य में जल के स्रोतों, जल की गुणवत्ता तथा उसके संरक्षण के लिए बहुत अधिक बल दिया गया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में माना गया है कि ब्रह्मण्ड में जितने भी प्रकार का जल है उसका हमें संरक्षण करना चाहिए। वेदों में कहा गया है कि वर्षा के होने से जल में प्रवाह आता है और नदी के रूप में जल प्रवाह को प्राप्त करता है। प्रवाह युक्त जल को हमारे संस्कृति में पवित्र माना गया है। तभी तो हमारी संस्कृति में नदियों को माता के समान तथा पूजनीय माना गया है। नदियों की पवित्रता के संबंध् में वैदिक साहित्य में कहा गया है कि ऐसी नदी जो पर्वत से निकल कर समुद्र तक प्रवाहित होती है वह पवित्र होती है। इस बात के माध्यम से वैदिक ऋषि हमें संदेश देना चाहते हैं कि नदियों के अबाध् प्रवाह को सरंक्षित किया जाना चाहिए। नदियों को बहने देना चाहिए। ऋग्वेद के ऋषि का कथन है कि हे मनुष्यों! अमृत तुल्य तथा गुणकारी जल का सही प्रयोग करने वाले बनो। जल की प्रशंसा और स्तुति करने के लिए सदैव ही तैयार रहो-

अप्स्वडन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये देवा
भक्त वाजिनः।

- ऋग्वेद 1/23/19

वैदिक वाङ्ग्मय में वर्णित पांच प्रकार के प्राकृतिक जलस्रोत

जलविज्ञान की दृष्टि से ऋग्वेद के एक मंत्र में जल प्राप्ति के पांच प्रमुख प्रकार बताए गए हैं-

"या आपो दिव्य उत वा स्रवन्ति ,
खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता ,
आपो देवीरिह मामवन्तु॥"

-ऋग्वेद,7/49/2

1- 'दिव्या आपः' – वर्षा से प्राप्त जल
2- 'स्रवन्त्यः आपः' – नदियों से प्राप्त जल
3- 'खनित्रिमा आपः' – खुदाई करके कुओं, बावडियों से प्राप्त जल
4- 'स्वयंजाः आपः' – स्वयं उत्पन्न झरनों का जल
5- 'समुद्रार्थाः आपः'– समुद्रों से प्राप्त जल –

वैदिक कालीन जलविज्ञान के शोध और प्रायोगिक स्तर पर जल उपलब्धि की जैसे जैसे दिशाएं

उद्घाटित होती गईं जल के विविध प्रकारों की संख्या भी बढ़ती गई. यही कारण है कि अथर्ववेद (19/2) में जल के दस और यजुर्वेद (22/25) में ग्यारह भेदों का नामोल्लेख मिलता है। वैदिक कालीन कृषि व्यवस्था आज की तरह पूर्ण रूप से मानसूनों की वर्षा पर निर्भर थी. समय पर वर्षा न होने पर अकाल तथा सूखे से बचने के लिए वैदिक काल के किसानों ने पेय जल और सिंचाई के जल की आपूर्ति हेतु कृत्रिम जलसंचयन प्रणालियों जैसे नहरों, तालाबों, झरनों, कुओं आदि के निर्माण हेतु वैज्ञानिक तकनीक को सीख लिया था। शायद हमें या हमारे जलवैज्ञानिकों को कम ही मालूम होगा कि ऋग्वेद में कुएं, तालाब, जैसे जलाशय के लिए 'अवत' शब्द का प्रयोग बार बार आया है। इसी 'अवत' नामक कृत्रिम जलाशय में जल भण्डारण करके पेय जल और सिंचाई हेतु जल का उपयोग किया जाता था-

"सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयम्."

-ऋग्वेद,10/101/5

जलाशय के लिए वैदिक 'सुवरत्रम्' शब्द का प्रयोग बताता है कि रस्सी की सहायता से कुओं में से जल निकाला जाता था-

"इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचेनम्।"

ऋग्वेद,10/101/6

वैदिक कालीन कूपों के विविध प्रकार

ऋग्वेद में सिंचाई हेतु प्रयोग में लाए जाने वाली अनेक जल संचयन प्रणालियों का भी उल्लेख मिलता है जिनमें–'कूचक्र' (10/102/11) तथा 'अश्मचक्र' (10/101/7) की पहचान आधुनिक ढेंकुल और पक्के कुएं के रूप में की जा सकती है। वैदिक काल की उपर्युक्त सभी जल संचयन सम्बन्धी संज्ञाओं के विषय में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि ये सभी नाम 'कूप' के ही पर्यायवाची हों। सम्भव है कि ये 'काट', 'खात', 'अवत', 'ऋश्यदात्' कुएं आदि न होकर कृत्रिम रूप से बनाए गए गड्ढे या खाइयां हों जिन्हें सरोवर या तालाब के निकट जल उलीचने के प्रयोग में लाया जाता होगा। ऐसी भी संभावना की जा सकती है कि ये उस समय के किसानों द्वारा ऊंचे ऊचे पहाड़ों की समतल भूमि में खोदी गई गहरी खाइयां हों जिनमें वर्षा के जल का भंडारण किया जाता होगा तथा पशुओं के जल पीने की व्यवस्था इन्हीं जलाशयों के माध्यम से की जाती होगी। ऋग्वेद में कूप इत्यादि विभिन्न जल संस्थानों के एक दर्जन के लगभग उल्लेख मिलते हैं जिनके नाम इस प्रकार थे – 'कूप' (1/105/17), 'कर्त' (2/34/6),'वव्र' (5/32/8), 'काट (1/106/6), 'खात' (4/50/3), 'अवत' (4/17/6), 'क्रिवि' (5/44/4), 'उत्स' (2/16/7),'कारोतर (1/116/7), 'ऋश्यदात् (10/39/8), 'केवट' (6/54/7) आदि।

वैदिक साहित्य में जल स्रोतों, जल के महत्व, उसकी गुणवत्ता एवं संरक्षण की बात बारबार की गई है। जल के औषधीय गुणों की चर्चा आयुर्वेद (जो एक वेदांग है) के अतिरिक्त ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में भी मिलती है। भारतीय कृषिविज्ञान की महत्त्वपूर्ण रचना 'कृषिपाराशर' में तो यहाँ तक कहा गया है कि सम्पूर्ण कृषि का मूल कारण वर्षा ही है। वर्षा ही जन-जीवन का भी मूल है अतएव मौसम वैज्ञानिकों को वर्षा के पूर्वानुमान का ज्ञान होना बहुत आवशयक माना गया है –

"वृष्टिमूला कृषिः सर्वा वृष्टिमूलं च जीवनम्.
तस्मादादौ प्रयत्नेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत.."

– कृषिपाराशर, 2.1

वैदिक वाङ्मय में जल का धार्मिक महत्त्व

भारतीय संस्कृति पूजा प्रधान है। यहाँ किसी भी कार्य का प्रारम्भ पूजा से होता है और प्रत्येक कार्य का विसर्जन भी पूजा से ही होता है। पूजा हेतु सर्वप्रथम, पवित्रीकरण की आवश्यकता होती है और पवित्रीकरण के लिए जल की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार पूजा का विसर्जन, शान्ति - पाठ से होता है और शान्ति - पाठ में जब मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, तो पवित्र जल का अभिसिंचन किया जाता है, इस प्रकार जल के बिना, किसी भी तरह की पूजा सम्भव नहीं है। हिंदू धर्म में जल का विशेष धार्मिक महत्व है। इसलिए किसी भी पूजा-पाठ के प्रारम्भ **में** ही सबसे पहले शुद्ध जल का छिड़काव कर शुद्धिकरण की जाती है और जल से भरा कलश स्थापित किया जाता है। हिंदू धर्म में नदी को भी मां तुल्य मानकर अराधना की जाती है। पूजा-पाठ के साथ ही कई मंत्र-श्लोक में भी जल का महत्व मिलता है। आदिग्रंथों और पुराणों में भी जल के महत्व का वर्णन किया गया है। इतनी लंबी अवधि में भी पर्यावरण के प्रति पर्याप्त सजगता एवं जागरुकता का रुझान मिलता है। इसके अलावा इतिहास के पृष्ठों में दबे तमाम तथ्यों का उभारने पर पता चलता है कि इन दिनों भी पर्यावरण को कानूनी संरक्षण प्राप्त था।

" इदमाप: प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उतानृतम्॥"
- ऋग्वेद 10/ 2/ 8/

हे जल देवता ! मुझसे जो भी पाप हुआ हो, उसे तुम दूर बहा दो अथवा मुझसे जो भी द्रोह हुआ हो, मेरे किसी कृत्य से किसी को पीड़ा हुई हो अथवा मैंने किसी को गालियाँ दी हों, अथवा असत्य भाषण किया हो, तो वह सब भी दूर बहा दो। जल में अखण्ड प्रवाह, दया, करुणा, उदारता, परोपकार और शीतलता, ये सभी गुण विद्यमान रहते हैं। मनुष्य कितना भी दुखी क्यों न हो, ठंडे जल से स्नान करते ही वह शान्त हो जाता है। जल ही जीवन है। जल मानव को पुण्य - कर्म करने की प्रेरणा देता है।

वैदिक परंपराओं में जल संरक्षण का महत्व

हमारी वैदिक परंपराओं में जल संरक्षण का विशेष महत्व है। सभी नदियों के जल को पवित्रतम मानते हुये नदियों को माता गंगा, माता यमुना और कई अन्य नामों से भी पूजा जाता है। इसी कारण नदियों के जल को सर्वाधिक संरक्षणीय भी माना गया है क्योंकि वे कृषि क्षेत्र को सींचती है जिससे प्राणिमात्र का जीवन चलता है। नदियों का बहता जल शुभ माना गया है। वेद में मानव जीवन को 'कृषि - जीवन' कहा गया है और इसीलिए, जलश्रोतों से हमारा रागात्मक सम्बन्ध रहा है । नदियों को हमने, देवी - स्वरूपा, माता की संज्ञा से अभिहित किया है । 'ऋग्वेद' की इस ऋचा में 'सरस्वती' नदी की महिमा गाई गई है -

" अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमंब नस्कृधि ।। "
-ऋग्वेद / 2/8/14

हे सर्वोत्तम माते सरस्वती ! तू सर्वोत्तम नदी के समान है । जिन नदियों का प्रवाह प्रकट है, वे गंगा - यमुना जैसी, श्रेष्ठ नदियाँ हैं, परन्तु तेरा प्रवाह गुप्त है, इसलिए तू श्रेष्ठ्तम है । तू सभी देवताओं में श्रेष्ठ, आलोक प्रदाता है । हमारा जीवन अप्रशस्त जैसा बन गया है । हे माता ! तू उसे प्रशस्त कर । हम उपेक्षित हैं, निन्दित हैं । हे माता ! तू हमारा पथ प्रशस्त कर । इसलिए नदियों के जल को कभी भी किसी पकार से प्रदूषित नहीं करना चाहिए।

नदियां जल का वहन करती हुई, सभी प्राणिमात्र को तृप्त करती हैं। भोजनादि प्रदान करती हैं। आनन्द को बढ़ाती हैं। जल संरक्षण पर बल देते हुए ऋग्वेद में कहा गया है कि जल हमारी माता जैसे है।

जल घृत के समान हमें शक्तिशाली और उत्तम बनाये। इस तरह के जल जिस रूप में जहां कहीं भी हो वे रक्षा करने योग्य हैं.अथर्ववेद में सप्तसैन्ध्व नदियों का उल्लेख मिलता है। ये सात नदियां निम्न है- 1. सिंधु नदी, 2. विपाशा या व्यास नदी, 3. शतुद्रि या सतलज नदी, 4. वितस्ता या झेलम नदी, 5. असिक्की या चेन्नब अथवा चिनाब नदी और सबसे महान सबसे पवित्र 6. सरस्वती नदी (यह नदी आज कल विलुप्त हो चुकी है)।

आपो अस्मान्मातरः शुन्ध्यन्तु घृतेन ना घृत्प्वः पुनन्तु।

- ऋग्वेद 10.17.10

ऋग्वेद में इन नदियों को माता के समान सम्मान दिया गया है-

ता अस्मश्यं पमसा पिन्वमाना
शिवादेवीरशिवद।
भवन्त सर्वा नध्ः अशिमिहा भवन्तु।

-ऋग्वेद 7/50/4

जल संरक्षण के लिए वेदों में वर्षा जल तथा बहते हुए जल के विषय में कहा गया है कि हे मनुष्य! वर्षा जल तथा अन्य स्रोतों से निकलने वाला जल जैसे कुएं, बावडियां आदि तथा फैले हुए जल तालाब आदि के जल में बहुत पोषण होता है। इस बात को तुम्हें जानना चाहिए तथा इस प्रकार के पोषक युक्त जल का प्रयोग करके वेगवान और शक्तिमान बनना चाहिए

अपामहं दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम्
अपामह प्रण्जनेदश्वा भवय वाजिनः।

-अथर्ववेद 19/1/4

अर्थात वर्षा के जल को संरक्षित करना चाहिए क्योंकि यह सर्वाध्कि शुद्ध जल होता है। इस विषय में अथर्ववेद में कहा गया है कि-वर्षा का जल हमारे लिए कल्याणकारी है-

शिवा नः सन्तु वार्षिकीः।

-अथर्ववेद 1/6/4

वैदिक काल में जल प्रबंधन

प्राचीन भारतीय वैदिक संस्कृति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में जल प्रबंधन का कार्य वृहत् एवं अति उत्तम विधियों से किया जाता था। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार जल की उत्पत्ति 'नर' (पुरूशत्रपरब्रह्र्) से हुई है। अतः उसका प्राचीन नाम 'नार' है। वह (नर) 'नार' में ही निवास करता है। अतः उस नर को नारायण कहते है । विष्णु पुराण के अनुसार संसार के सृष्टि-कर्ता ब्रह्मा का सबसे पहला नाम 'नारायण' है तथा दूसरे शब्दों में भगवान का जलमय रूप ही संसार की उत्पत्ति का कारण है। 'जल ही जीवन है' इसीलिए जल की बर्बादी को रोकना, समुचित जल प्रबंधन का कार्य पर्याप्त मात्रा में करना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में वैदिक काल में किये गये जल प्रबंधन के कार्यो की व्याख्या है। मनुष्य इस सर्व सिद्ध सूत्र को पूर्णतः भुला बैठा है कि जल नहीं तो जीव या जीवन कुछ नही होगा; जबकि भारत देश में आज भी यत्र-तत्र वैदिक काल की जल संरक्षण और संभरण की विभिन्न व्यवस्थायें देखी जा सकती हैं और उन्हीं आयामों को अल्प परिवर्तनों के साथ अपना कर वर्तमान पर्यावरणीय समस्याओं से मुक्ति पायी जा सकती है। वैदिक काल में जल प्रबंधन का कार्य प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों ही स्रोत से करते थे। अतः वैदिक काल के जल प्रबंधन की आचार संहिता एवं उसके क्रियान्वयन के तौर तरीकों की खोज का अध्ययन करना भी आवश्यक हो जाता है। वास्तव में किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की धुरी पेय जल एवं सिंचाई प्रबंधन होता है जो कि जल प्रबंधन की मूलभूत विषय

वस्तु है, क्योंकि इस पर ही कृषि, औद्योगिक एवं तकनीकी प्रगति निर्भर करती है।

सिंधु घाटी सभ्यता के युग में वैदिक काल के लोगों की जीवनशैली ने पर्यावरण प्रेम को पूर्ण रूपेण दर्शाया है। वे विशेष रूप से वृक्ष पूजा करते थे। आर्यों और द्रविड़ों के द्वारा प्रारम्भ की गई यह प्रक्रिया एवं परंपरा बाद में भी जीवित रही। चंद्रगुप्त मौर्य के समय वन की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अभ्यारण्यों की पांच श्रेणियां होती थी। सम्राट अशोक के शासनकाल में सर्वप्रथम वन्य जीवों के संरक्षण हेतु नियम बनाए गए थे। इसके पश्चात् भी यह कार्य अनवरत रूप से चलता रहा। जब वेदों के अर्थ सामान्य जन के लिए कठिन प्रतीत होने लगे तब वेदों के सुलभ अर्थ ज्ञान के लिए वेदाङ्गों एवं पुराणों की रचना की गई। पुराण भारतीय साहित्य का गौरव ग्रंथ है। प्राचीन विद्वानों का मानना है कि यदि कोई द्विज चारों वेदों तथा उनके अंगों-उपनिषदों को भले अच्छा ज्ञाता है, यदि वह पुराण का अध्ययन नहीं करता, तो वह व्यक्ति विलक्षण-चतुर तथा शास्त्र कुशल नहीं हो सकता। चरक संहिता में आचार्य चरक ने भू जल की गुणवत्ता पर चर्चा भी की है। जल को प्रदूषित होने से बचाना चाहिए तथा हमारे प्रयास इस तरह से रहें कि जल प्रदूषित न करें। इस विषय में यजुर्वेद में कहा गया है कि जल को नष्ट मत करो-

“मा आपो हिंसी।य् मा आपो हिंसी।

-यजुर्वेद 6.22

यहां पर यजुर्वेद के प्रणेता ऋषि हमें आदेश देते हुये कहते हैं कि जल को कभी भी अनावश्यक मान कर नष्ट मत करो। यह अमूल्य निधि है। अथर्ववेद में नौ प्रकार के जलों का उल्लेख किया गया है- ; परिचरा आप -प्राकृतिक झरनों से बहने वाला जल; हेमवती आपः -हिमयुक्त पर्वतों से बहने वाला जल; वर्ष्या आपः -वर्षा जल; सनिष्यदा आपः -तेज गति से बहता हुआ जल; अनूप्पा आपः - अनूप देश का जल अर्थात् ऐसे प्रदेश का जल जहां पर दलदल अधिक हो; ध्न्वन्या आपः - मरुभूमि का जल; कुम्भेभिरावृता आपः - आपः घड़ों में स्थित जल ; अनभ्रयः आपः – किसी यंत्र से खोदकर निकाला गया जल, जैसे-कुएं का; उत्सया आपः - स्रोत का जल, जैसे-तालाबादि।

वैदिक - वांग्मय में जल के औषधीय महत्त्व

वैदिक - वांग्मय में जल के महत्त्व को सर्वात्मना स्वीकार किया गया है और जल की गरिमा - महिमा का बखान, श्रुतियों में सर्वत्र किया गया है।

"रूपरसस्पर्शवत्य आपोद्रवाः स्निग्धाः॥2॥"

वैशेषिक दर्शन, द्वितीय अध्याय, प्र.आ. जल तत्व में रूप , रस और स्पर्श, इन तीन गुणों का समावेश है। जल, स्निग्ध होने के साथ - साथ प्रवाहित भी होता है। प्रगट स्वरूप होने के कारण जल रूपवान भी है। जल को मुख में डालने पर, शीतल, गर्म, खारा एवं मधुर आदि का, रसास्वादन होने से, यह रस है। जल का स्पर्श करने पर, उसके शीत और उष्ण होने का पता चलता है इसलिए जल, स्पर्श गुण से सम्पन्न है और अग्नि तथा वायु के गुणों का सम्मिश्रण भी है। जल का उपयोग चिकित्सा के लिए भी किया जाता रहा है, जैसा कि " यजुर्वेद " में कहा गया है -

" युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्ये
यूयमिन्द्रमवृणीध्वं
वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिता स्थ। अग्नये त्वा जुष्टं
प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।
दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुध्दाः
पराजघ्नुरिदं वस्तच्छु न्धामि॥13॥"

यजुर्वेद प्रथम अध्याय में प्रतिपादन किया गया है कि जैसे यह सूर्यलोक, मेघ के वध के लिए, जल को स्वीकार करता है, जैसे जल, वायु को

स्वीकार करते हैं, वैसे ही हे मनुष्यों ! तुम लोग उन जल औषधि - रसों को शुद्ध करने के लिए, मेघ के शीघ्र - वेग में, लौकिक पदार्थों का अभिसिंचन करने वाले, जल को स्वीकार करो और जैसे वे जल शुद्ध होते हैं, वैसे ही तुम भी शुद्ध हो जाओ। भगवान ने सूर्य एवं अग्नि की रचना इसलिए की, कि वे सभी पदार्थों में प्रवेश कर उनके रस एवं जल को तितर - बितर कर दें ताकि वह पुन: वायुमंडल में जाकर और वर्षा के रूप में फिर धरती पर आ कर सबको शुचिता और सुख प्रदान कर सके।

"आपोSअस्मान् मातर: शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्व: पुनन्तु।
विश्व हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्य: शुचिरा पूतSएमि।
दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवा शग्मां परिदधे भद्रं वर्णम पुष्यन्।"

- यजुर्वेद, 4/2

यजुर्वेद में कहा गया है कि मनुष्य को चाहिए कि जो सब सुखों को देने वाला, प्राणों को धारण करने वाला तथा माता के समान, पालन - पोषण करने वाला जो जल है, उससे शुचिता को प्राप्त कर, जल का शोधन करने के पश्चात ही, उसका उपयोग करना चाहिए, जिससे देह को सुंदर वर्ण, रोग - मुक्त देह प्राप्त कर सके। अनवरत उपक्रम सहित, धार्मिक अनुष्ठान करते हुए, अपने पुरुषार्थ से आनंद की प्राप्ति हो सके। वैदिक ऋषियों ने वैज्ञानिकों की तरह जल एवं वायु को प्रदूषण - मुक्त करने की बात कही है। यजुर्वेद में उन्होंने यह परामर्श भी दिया है कि हम वर्षा - जल को भी, किस प्रकार औषधीय गुणों से परिपूर्ण कर सकते हैं।

" अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्मार्य प्रजाभ्य: ।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधय: सुपिप्पला: ।
। "

-यजुर्वेद / 11/38

वैदिक ऋषियों का जीवन एक प्रयोग- शाला थी। उन्होंने चिन्तन, मनन और निदिध्यासन से जो उपलब्धि हासिल की , उसे जन- कल्याण हेतु समर्पित कर दिया।

"अपामह दिव्यानामपां स्त्रोतस्यानाम् ।
अपामह प्रणेजनेSश्वा भवथ वाजिन: ॥"

-अथर्ववेद / 19 / 4

अथर्वेद में प्रतिपादित किया गया है कि हर राजा के पास दो तरह के वैद्य होना चाहिए। एक वैद्य, सुगन्धित पदार्थों के होम से, वायु, वर्षा - जल एवं औषधियों को शुद्ध करे। दूसरा श्रेष्ठ विद्वान्, वैद्य बनकर, प्राणियों को रोग -रहित रखे , "सर्वे भवन्तु सुखिन:" हमारा आदर्श है और इस आदर्श के निर्वाह के लिए इन दोनों दायित्वों का निर्वाह अनिवार्य है।

" यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टय: संबभूवु:।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमि: पूर्व पेये दधातु।। "

-अथर्ववेद / 12/ 3

सागर, नदी, कुआँ और वर्षा का जल तथा कृषि कार्य आदि से, जो मनुष्य, नाव, जहाज कला - यंत्र आदि का, विधेयात्मक प्रयोग करता है, वह सबको आनन्द प्रदान करता है। ऐसा व्यक्ति स्वत: भी श्रेष्ठ पद को प्राप्त करता है।

"शं त आपो हैमवती: शमु ते सन्तूत्स्या:।
शं ते सनिष्पदा आप: शमु ते सन्तु वर्ष्या:।। "

-अथर्ववेद/ 19 / 1

मनुष्य को चाहिए कि वह वर्षा, कुऑ, नदी और सागर के जल को, अपने खान-पान, खेती और शिल्प- कला आदि के लिए उपयोग करे एवम् अपने जीवन को सम्पूर्ण बनाए और चारों पुरुषार्थो को प्राप्त करे।

"अनभ्रय: खनमाना विप्रा गम्भीरे अंपस:।"
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि।।"
-अथर्ववेद/19 /3

विद्वान्, जिज्ञासु, वैद आदि तपस्वी साधक, अनेक तरह के रोगों में, जल के प्रयोग के द्वारा, जल के अनन्त गुणों की आपस में व्याख्या करें और समाज के हित में उसका भरपूर उपयोग करें। जल - चिकित्सा बहुत ही प्रभावी चिकित्सा पद्धति है, समस्त रोगों का निदान इससे सम्भव है। मनुष्य को चाहिये कि वह सागर, वर्षा, नदी, सरोवर आदि के जल को आवश्यकतानुसार चिकित्सा मे उपयोग कर के खेती के संसाधन की तरह, जल का प्रयोग करके, निरोग, वेगवान, प्रखर, एवम् बलशाली बने और समाज के हित में अपनी प्रतिभा एवम् अपने बल का समुचित उपयोग कर सके।

"ता अप: शिवा अपोSय मं करणीरप: ।
यथैव तप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजी:।।"
-अथर्ववेद / 19/5

जल की महत्ता के विषय में , मैं इतना ही निवेदन करना अभीषट समझता हूॅ कि " जल है तो कल है " इस बात को हमारे पूर्वज, भली - भांति जानते थे और यही कारण है कि उन्होने, जल की महिमा का बखान , वेद- वांग्मय एवम् सभी धर्म- ग्रंथों में किया है। हमें जल बचाने का उपक्रम करना चाहिये। जल के महत्व को समझ कर, सावधानी - पूर्वक उसका उपयोग करना चाहिये ताकि हम अपनी भावी पीढी के लिए जल बचा कर रखें, जैसे हमारे पूर्वज हमारे लिए, जल का विशाल भंडार छोड़ कर गए हैं।

"मायो मौष घीहि ऊं सीर्घाम्नोः घाम्नो राजस्त्तो वरूण नो मुंच।" -यजुर्वेद 6/22

अर्थात हे राजन, आप अपने राज्य के स्थानों में जल और वनस्पतियों को हानि न पहुँचाओ, ऐसा उद्यम करो जिससे हम सभी को जल एवं वनस्पतियाँ सत्त रूप से प्राप्त होती रहे। उपरोक्त मंत्र ऐसे अनेक मंत्रों में एक है जिनमें जल संरक्षण एवं जल की महत्ता की बात की गई है। वैदिक संहिताओं में विभिन्न देवताओं को सम्बोधित प्रार्थनापरक मंत्रों में भी आधुनिक जलविज्ञान और मानसून विज्ञान से सम्बन्धित अनेक ऐसी मान्यताएं और अवधारणाएं आई हैं जिन्हें आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी बहुत उपयोगी और प्रासंगिक कहा जा सकता है ।

भारतीय वैदिक साहित्य के प्रणेता ऋषि-मुनि जल के महत्त्व और गुणों से सर्वथा न केवल परिचित ही थे वरन वे यह भी जानते थे थे कि जल का व्यवहार किस प्रकार किया जाना है और जल की गुणवत्ता को किस प्रकार से सुनिश्चित किया जा सकता है इसी लिए उन्होने जल को अमृत की संज्ञा प्रदान की है। जल वृष्टि के देवता इंद्र और जल संरक्षण के देवता वरुण हैं। इन की स्तुति करने के लिए अनेकों श्लोकों की रचना के गई है। आदि ग्रंथ और उत्तरोत्तर सभी ग्रन्थों में जल की महिमा का वर्णन और उस की स्तुति की गई है। अर्थात अनादि काल से जल हमारी धार्मिक और साहित्यिक संचेतना का केंद्र विंदु रहा है। इस कारण आज भी हमारा जल

ज्ञान प्राचीन ऋषियों के ज्ञान से अधिक भिन्न नहीं है। अस्तु आज पुनः हम सभी पृथ्वी वासियों से जल को किसी प्रकार की क्षति पहुंचाने अथवा संदूषित करने से बचाने की प्रार्थना करते हैं। जल की शुद्धता बनाए रखने, यथा संभव जल को संग्रहीत

करने, जल के स्रोतों का संरक्षण और संवर्धन करने की प्रार्थना करते हैं ताकि प्राण तत्व के रूप में भविष्य में जल से संबन्धित किसी भी विभीषिका से मानव मात्र बचाय जा सके इसी में हम सभी का कल्याण निहित है और भविष्य में आने वाली पीढ़ियों का सौभाग्य भी हमारे आज के सत्कर्मों का ही फल होगा।

***